आज श्रावण कृष्ण एकम् है। श्रावण कृष्ण एकम् अर्थात् लौकिक रीति से सिद्धान्त के हिसाब से श्रावण कृष्ण एकम् है, श्रावण का पहला पखवाड़ा गया। भगवान को वैशाख शुक्ल दसवीं को केवलज्ञान हुआ परन्तु जिस समय में पर्याय निकलने की हो, उस समय निकले न! निमित्त से ऐसा कहा जाता है कि गणधर नहीं थे। गौतम गणधर नहीं थे, ऐसा निमित्त से कहा जाता है। बाकी वाणी की पर्याय उस काल में परमाणु में से भाषा की पर्याय होने का काल होवे, उस स्वकाल में वह भाषापर्याय होती है। उसमें आत्मा उसका कर्ता नहीं है। आज भगवान की दिव्यध्वनि का दिन है।

दूसरी बात कि आज गौतमस्वामी गणधर पद को प्राप्त हुए। दिव्यध्वनि सुनी, पहले

से ही मुनिपना मिला। यह तो सुना। आज उन्हें गणधर पद मिला, वह दिन है। चार ज्ञान की प्राप्ति हुई, वह दिन आज है और बारह अंग की रचना हुई, वह यह दिन है। शास्त्र की बारह अंग की रचना हुई, वह आज का दिन है।

अपने यहाँ निर्जरा अधिकार चलता है। आहाहा! जब भगवान की दिव्यध्वनि हुई, कितने ही जीव आत्मज्ञान को प्राप्त हुए। वह भी यही दिन है। क्योंकि सब छोड़कर एक प्रभु चैतन्य गोला अनादि-अनन्त नित्यानन्द ऐसा जो आत्मा, उसकी जिसने अन्तर की रुचि की, अन्तर के अतीन्द्रिय आनन्द जो बेहद स्वभाव है, अचिन्त्यस्वभाव और बेहद स्वभाव है, ऐसे आनन्द का अनुभव आया। उसे समकित कहने में आता है। आहाहा! जिसके स्वाद के समक्ष... यह यहाँ चलता है, देखो!

भावार्थ : सम्यग्दृष्टि को ज्ञानी कहा है... सम्यग्दृष्टि अर्थात् यह। पूर्ण प्रभु गोला, वस्तु नित्यानन्द प्रभु, अनन्त-अनन्त अन्वय शक्तियों का सागर और सुख-सागर का नीर, सुख के सागर के नीर से भरपूर, उसका जहाँ आदर हुआ, उसकी सन्मुखता हुई, संयोग राग और पर्याय की ओर से विमुखता हुई, तब जो अनादि का राग का, कर्म का स्वाद था, रागकर्म, हों! जड़कर्म नहीं। आहाहा! उस राग के स्वाद के स्थान में भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का दल, ध्रुववस्तु का स्वाद आया, इसलिए उस सम्यग्दृष्टि जीव को ज्ञानी कहा। क्योंकि जो वस्तु है, उसका उसे यथार्थ वेदन हुआ, स्वसंवेदन (हुआ)। आहाहा! यह करने का है, पहले में पहले करनेयोग्य यह है।

सम्यग्दृष्टि को ज्ञानी कहा... क्योंकि ज्ञानस्वरूप प्रभु का अनुभव और आनन्द का स्वाद आया, इसलिए ज्ञान शक्तिरूप जो पूर्ण था, उसमें से आंशिक स्वसंवेदन में प्रगट हुआ, इसलिए सम्यग्दृष्टि को ज्ञानी कहा। **और ज्ञानी के राग-द्वेष-मोह का अभाव कहा...** आहाहा! अस्थिरता में राग होता है, परन्तु उसका रस और सुखबुद्धि उड़ गयी है। आहाहा! इसलिए उसके राग-द्वेष-मोह का अभाव कहा। क्योंकि वीतरागमूर्ति प्रभु का जहाँ अनुभव हुआ, उसके वेदन के समक्ष राग का वेदन जहर जैसा लगता है। राग आता है परन्तु अतीन्द्रिय आनन्द के प्रत्यक्ष वेदन के निकट वह चारित्रमोह का जो राग है, वह जहर जैसा, दुःख, काला नाग देखे और जैसे (दुःख) हो, वैसा ज्ञानी को (लगता है)। आहाहा! क्योंकि वहाँ प्रभु स्वयं महा परमात्मस्वरूप जो नजर के आड़ में नजर में नहीं आया था, वह

नजर में आया अर्थात् दूसरे के ऊपर से सब नजरें अलग हो गयी। आहाहा! इसलिए उसे राग-द्वेष-मोह नहीं है, ऐसा कहा। मोह तो नहीं परन्तु थोड़े राग-द्वेष हैं, तथापि आत्मा के स्वभाव के वेदन के जोर के समक्ष उसे राग-द्वेष अस्थिर है, उन्हें है नहीं—ऐसा कहा। क्योंकि उनका रस नहीं है, रुचि नहीं है, प्रेम नहीं है, आदर नहीं है, सत्कार नहीं है, स्वीकार नहीं है। आहाहा! यह भगवान की दिव्यध्वनि में आया वह यह है। आहाहा!

उसे **राग-द्वेष-मोह का अभाव कहा है; इसलिए सम्यग्दृष्टि विरागी है।** अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद के समक्ष राग जहर जैसा दिखायी देता है, उस राग से वैरागी है। राग के रस में नहीं, राग से विरक्त है और आत्मा के रस में है, तो आत्मा में रक्त है। आहाहा! यह 'निर्जरा अधिकार' है। इसके बिना इसके जन्म-मरण के दुःख के ढ़ेर, बापू! (मिटें ऐसा नहीं है)। आहाहा! नरक और निगोद के दुःख सुने नहीं जाएँ, वे इसने भोगे हैं, अनुभव किये हैं। आहाहा! यह गर्मी और सर्दी तथा जब से जन्मे, तब से सोलह रोग। ऐसे वेदन में अनन्त काल व्यतीत हुआ। नरक और निगोद के दुःख में अनन्त-अनन्त काल गया। वह दृष्टि गुलांट खाती है। आहाहा! अब यह नहीं। मेरा प्रभु मुझे रह गया। मेरे पास अर्थात् मैं स्वयं हूँ। आहाहा! प्रभु मैं स्वयं हूँ और मैंने पामरता सेवन की। आहाहा! राग के कण खुशी और प्रसन्नता कर डाली और प्रभु अनन्त गुण का पिण्ड, जिसके माहात्म्य का पार नहीं होता, ऐसे प्रभु को तो मैंने गिना नहीं। अब कहते हैं कि सम्यग्दर्शन में मैंने उसे गिना है, गिनती में लिया है। दूसरे हैं, उन्हें गिनती में नहीं लिया। आहाहा! रागादि की अस्थिरता होती है, उसे गिनती में नहीं लिया। आहाहा! गिनती में भगवान आत्मा अकेला शान्त वीतराग की पूर्णता के प्रताप से भरपूर भगवान, उसकी दशा का, वीतरागता का जहाँ स्वाद आया, उसके समक्ष राग का स्वाद तो जहर जैसा दिखता है, इसलिए उसे राग, द्वेष, मोह नहीं है। आहाहा! ऐसी बात है।

उसके इन्द्रियों के द्वारा भोग दिखायी देता हो... पूर्व के किसी पुण्य के योग से उसे बाह्य में सामग्री दिखती है। आहाहा! स्त्री, कुटुम्ब, परिवार सब होता है। आहाहा! (उसमें) कहीं मेरेपन की बुद्धि उसको नहीं होती। भगवान की भक्ति का प्रशस्तराग, उसके प्रति भी जहाँ जहरबुद्धि है... आहाहा! उसे परपदार्थ के प्रति प्रेम कैसे होगा? जिसका कुछ सम्बन्ध नहीं। आत्मा और परपदार्थ को कुछ सम्बन्ध नहीं। आहाहा! इसलिए **उसके**

इन्द्रियों के द्वारा भोग दिखायी देता हो, तथापि उसे भोग की सामग्री के प्रति... देखा ? सामग्री, पदार्थ, वस्तु। स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, पैसा, अरबों (रुपया), मकान बड़ा दस-दस लाख का, बीस लाख का हो, परन्तु उस सामग्री के प्रति प्रेम नहीं है। वह मेरी चीज़ ही नहीं है, जिसमें मैं नहीं, जिसमें मैं नहीं, जिसमें वह नहीं। आहाहा! इसलिए धर्मी को इन्द्रिय की सामग्री के प्रति राग नहीं है। आहाहा!

कोई दुश्मन घर आया हो और एक मेहमान, सगा-सम्बन्धी आया हो, दोनों में एकदम दृष्टि में अन्तर है या नहीं ? है ? आया हो तो झट चला जाए। आहाहा! भगवान आत्मा! ऐसी कोई अनमोल अचिन्त्य कोई शक्ति का धनी प्रभु है कि जिसके स्वीकार और सत्कार के कारण पूर्व के पुण्य से प्राप्त सामग्री है न ? उसके प्रति प्रेम नहीं। आहाहा! जैसे दुश्मन घर में आवे और प्रेम नहीं। लड़के को मार डालनेवाला हो और वह आया (होवे तो) है जरा भी प्रेम ?

मुमुक्षु : लेनदार आवे तो भी नहीं होता।

पूज्य गुरुदेवश्री : तथापि लेनदार तो ऐसा कि भाई! मेरे पास पैसा है। परन्तु यह दुश्मन देखकर.... राग दुश्मन है। आहाहा!

प्रभु वीतराग मूर्ति उपशम शान्तरस का सागर, शान्तरस का सागर ऐसा जो भगवान आत्मा, उसका जो अनुभव, उसकी अनुभव में जो प्रतीति (हुई) और उसका जो ज्ञान (हुआ), उसमें बाहर की सामग्री हो तो भी उसके प्रति प्रेम नहीं, राग नहीं। आहाहा! है ?

वह जानता है कि 'यह (भोगों की सामग्री) परद्रव्य है,... परद्रव्य है। परद्रव्य को और मुझे कोई पर्याय का भी सम्बन्ध नहीं है, वहाँ द्रव्य-गुण की तो बात ही क्या करना ? आहाहा! उस-उस द्रव्य की वह-वह पर्याय उससे स्वतन्त्र (होती है)। स्त्री हो या पुत्र हो या परिवारी कोई बड़े, भाई, माता-पिता हो, सब चीज़ पर है। उनके साथ मुझे कुछ सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! **'यह (भोगों की सामग्री) परद्रव्य है,...** परवस्तु है। परवस्तु और मुझमें अत्यन्त अभाव है। आहाहा! ऐसा मार्ग है।

छियानवें हजार स्त्रियों में रहा हुआ समकिती, वह आत्मा में रहा है। आहाहा! कहीं उसे मेरा है, ऐसी मीठी नजरें कहीं नहीं हैं। मीठी नजरें जहाँ पड़ी है, वहाँ भगवान के ऊपर,

उस नजर से दूसरे की किसी चीज़ के प्रति मिठास नहीं देता। आहाहा! वे परद्रव्य हैं, **मेरा और इसका कोई सम्बन्ध नहीं है;...** यहाँ तक आया था। मुझे और उसे कुछ नाता नहीं है, कोई सम्बन्ध नहीं है। अरे! आहाहा! घर में लड़का आवे, करोड़ों रुपये कमाकर आवे, बहुत अरबों पैसे (रुपये) पैदा करे, अरबस्थान में दुकान डाली हो, वहाँ से पैसे आये हैं। आहाहा! जैचन्दभाई थे न? तुम्हारे ससुर। जैचन्दभाई, वे वहाँ से—बाहर से आये थे। हो..! कमाऊ पुत्र हुआ, भाई! तब दो लाख रुपये (थे)। तब दो लाख अर्थात् पच्चीस-तीस गुने। उसके पिता ने बाँथ भरी (गले लगाया)। आहाहा!

जिसे अपना माना हो, उसके साथ बाँथ भरता है। भगवान आत्मा को जिसने जाना और जिसके अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद में—मिठास में आया, मीठी नजरें मिठास में आयीं। आहाहा! सम्यग्दर्शन वह मीठी नजर है। उस मीठी नजर से मीठा भगवान आत्मा जहाँ स्वाद में आया, उसे बाहर के भोग परद्रव्य है, उनके साथ कुछ नाता नहीं है। आहाहा!

कर्मोदय के निमित्त से इसका और मेरा संयोग-वियोग है। है? वह तो कर्म के उदय के कारण संयोग आवे, उदय आया, (वह) खिर जाए तो संयोग चला जाए। आहाहा! विद्यमान ऋद्धि एक क्षण में अरबों रुपये फिर समाप्त हो जाए। बिहार में है न करोड़पति? घूमने गया (और) आया वहाँ मकान नीचे स्वाहा..! क्या कहलाता है वह? भूकम्प! भूकम्प हुआ। करोड़पति घोड़ागाड़ी में घूमने गया हुआ था। जहाँ यहाँ आता है वहाँ मकान और परिवार सब समाप्त! नाशवान चीज़ के लिये अवधि क्या? आहाहा! कि इस क्षण में (गिरेगी)। लोग शोर मचा गये हैं, वह गिरने का है वह। सुमनभाई! गिरने का है। कल कोई कहता था, यहाँ गाँव में चिल्लाहट मचायी। यहाँ ठेठ! यहाँ गिरेगा, कोई टुकड़ा गिरेगा, भावनगर में गिरेगा। अरे! परन्तु बापू! कौन गिरे? कहाँ गिरे? तू कहाँ है? आहाहा! तुझे कोई चीज़ स्पर्श नहीं करती, तू किसी को स्पर्श नहीं करता तो गिरे किसके ऊपर? आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **कर्मोदय के निमित्त से इसका और मेरा...** धर्मी ऐसा समझता है कि यह कर्मोदय है, तो संयोग दिखायी देता है। यह उदय खिर जाएगा तो संयोग चला जाएगा। आहाहा! उसके और मुझे कुछ सम्बन्ध नहीं है। मैं स्वद्रव्य कहाँ और वह परद्रव्य कहाँ? किसी समय किसी काल में भी उसके साथ मुझे नाता—सम्बन्ध है नहीं। आहाहा!

जब तक उसे चारित्रमोह का उदय आकर... अब यह जरा... वह सामग्री तक लिया। सामग्री तक लिया, अब अन्तर में लेते हैं। आहाहा! **जब तक उसे चारित्रमोह का उदय आकर पीड़ा करता है...** अन्दर राग आवे, दुःख आवे, दुःख आवे। किसी प्रकार राग हटता न हो। आहाहा!

और स्वयं बलहीन होने से पीड़ा को सहन नहीं कर सकता... आहाहा! रागादि आया हो परन्तु उसे टाल नहीं सकता। आहाहा! उसकी पीड़ा दूर करके सहन नहीं कर सकता। आहाहा! राग है। आहाहा! पीड़ा सहन नहीं कर सकता होने से। **तब तक-जैसे रोगी रोग की पीड़ा को सहन नहीं कर सकता, तब उसका औषधि इत्यादि के द्वारा उपचार करता है...** रोगी। यह तो दृष्टान्त है, हों! **इसी प्रकार-भोगोपभोग सामग्री के द्वारा विषयरूप उपचार करता...** आहाहा! यह निमित्त से कथन है। उस सामग्री का लक्ष्य, राग है न? इसलिए उस सामग्री के प्रति लक्ष्य जाता है, इसलिए उसका उपभोग करता है, ऐसा कहते हैं। बाकी परद्रव्य का उपभोग (कौन करे)? आहाहा! **भोगोपभोग सामग्री के द्वारा विषयरूप उपचार करता हुआ...** समझाना है तो क्या समझावे? बाकी परपदार्थ को स्पर्श भी नहीं करता। आहाहा! राग आवे, राग को सहन नहीं कर सकता अर्थात् छूटता नहीं, इसलिए कमजोरी के कारण राग की पीड़ा सहन नहीं होती, इसलिए पीड़ा में जुड़ जाता है। आहाहा! इसलिए बाह्य सामग्री के प्रति उसका लक्ष्य जाता है, ऐसा कहते हैं। भाषा तो ऐसी है कि **भोगोपभोग सामग्री के द्वारा विषयरूप उपचार करता हुआ...** भाषा तो क्या (करे)? उस प्रकार का राग आया और वह जो सामग्री है, उसके प्रति लक्ष्य गया, इसलिए उस सामग्री का (से) इलाज करता है। आहाहा! स्पर्श भी नहीं करता और इलाज करता है। आहाहा!

किन्तु जैसे रोगी रोग को या औषधि को अच्छा नहीं मानता... रोगी रोग को और रोग मिटाने के औषध को (भला नहीं जानता)। यह औषध सदा रहना। रोग रहे और लोग देखने आवे, (ऐसी) रोग की भावना होगी? आहाहा! **उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि चारित्रमोह के उदय को...** रोग जानता है। आहाहा! **या भोगोपभोग सामग्री को अच्छा नहीं मानता।** दो बातें ली हैं। अन्दर में होनेवाला राग और बाहर की होनेवाली सामग्री, उसे कहीं भली नहीं जानता। आहाहा! देखो! यह तत्त्वदृष्टि! आहाहा! व्रत, तप, भक्ति और यह

तो बाद में बात, वह (शुभभाव) भी बन्ध का कारण है। यहाँ तो पहले से चारित्रमोह का राग आवे और सामग्री के प्रति लक्ष्य जाए, उसे इलाज करता है—ऐसा कहा जाता है। आहाहा! परन्तु राग को, विषय सामग्री को भली नहीं जानता। आहाहा! भली नहीं जानता तो भोग कैसे करता है? अरे! बापू! आहाहा! उस जहर से छूटता नहीं; इसलिए जरा जहर में जुड़ जाता है। आहाहा! कोई स्वच्छन्दी उसका नाम लेकर ऐसा करे (तो) ऐसा नहीं चलता। वह तो अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद के समक्ष जिसे राग का और राग की जो सामग्री है, उसके प्रति का प्रेम उड़ गया है, सुखबुद्धि उड़ गयी है। अपने आत्मा में आनन्द है, इसके अतिरिक्त कोई चीज़, राग, दया, दान, व्रत, भक्ति आदि किसी परिणाम में मेरा सुख और सुख का कारण मेरे आत्मा के अतिरिक्त कहीं नहीं है। आहाहा! **अच्छा नहीं मानता।**

और निश्चय से तो, ज्ञातृत्व के कारण... लो, देखा! **सम्यग्दृष्टि विरागी उदयागत कर्मों को मात्र जान ही लेता है,...** प्रेम नहीं है, यह तो ठीक, कहते हैं। बाकी तो ज्ञान का स्वभाव ही उस समय में ऐसा होता है कि उसे जानता है, ऐसा कहना वह भी व्यवहार है। राग को जानता है, यह भी (व्यवहार है)। परन्तु ज्ञान की पर्याय का उस समय का स्वभाव स्व-परप्रकाशक स्वयं अपनी सत्ता के सामर्थ्य से प्रगट होता है। आहाहा! उसे वह जानता है। आहाहा! **ज्ञातृत्व के कारण...** ऐसा कि निश्चय से तो ज्ञातापने के कारण। व्यवहार से बात ऐसी की है कि राग को दुःखरूप जानता है, जुड़ जाता है, सामग्री में जुड़ता है परन्तु वास्तव में देखो तो यह बात ऐसी है नहीं। आहाहा! अब ऐसी बातें सुनने को मिलती नहीं और बाहर में जरा निकम्मी पौथी पढ़े वहाँ... आहाहा! यह स्त्री मेरी, यह पुत्र मेरा, पैसा मेरा... अरे! कहाँ बापू! कहाँ तू और कहाँ ये? कहीं पूर्व-पश्चिम को कहीं किसी द्रव्य के साथ मेल नहीं मिलता। आहाहा! यह तो अज्ञानी को भी (ऐसा है)। अब यहाँ तो कहते हैं, ज्ञानी को जरा राग आता है, उसके साथ मेल नहीं है। आहाहा! अरे! मेरा वीतरागस्वभाव, उसके स्वाद की मिठास के समक्ष राग के जहर की मिठास जहर जैसी लगती है। आहाहा! उसकी अपेक्षा यहाँ तो कहते हैं कि यदि निश्चय से कहें तो वह जानने-देखनेवाला ही है। यह विषय और राग आता है और पीड़ा जानता है और सामग्री को भोगता है, यह बात व्यवहार से भले की है। आहाहा!

ज्ञातृत्व के कारण सम्यग्दृष्टि... देखो! यह धर्म की दशा की बात है, बापू!

आहाहा! तीन लोक का नाथ जहाँ जागकर उठता है, उसके स्वाद की मिठास के समक्ष पूरी दुनिया उसे जहर जैसी लगती है। आहाहा! कहीं उसे रस नहीं आता। रस आया है, वहाँ से निकलता नहीं। आहाहा! अब ऐसा धर्म का स्वरूप। आहाहा! **ज्ञातृत्व के कारण सम्यग्दृष्टि विरागी उदयागत कर्मों को मात्र जान ही लेता है,...** पहले कहा था कि राग का स्वाद जरा दुःखरूप लगता है। सामग्री ले, इलाज करे, जैसे रोगी रोग का इलाज करता है (उसी प्रकार)। वह तो एक समझाने की बात (की है)। आहाहा! परन्तु वास्तव में तो **उनके प्रति उसे रागद्वेषमोह नहीं है।** जान लेता है, फिर प्रश्न कहाँ है? आहाहा!

भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का सागर, उसके आनन्द की कहीं गन्ध नहीं मिलती, विषय में-पैसे में लड़के में-पुत्र में उनके ऊपर नजर जाने पर जहर आवे। आहाहा! यह कहते हैं कि हमने एक अपेक्षा से समझाया, बाकी तो राग आता है, उसे जान लेता है। आहाहा! देखो! यह वस्तु का स्वरूप। अरे! इसे जाने बिना चौरासी के नरक और निगोद के दुःख सहन किये, बापू! सुने भी जाएँ नहीं। आहाहा! और जब तक अभी मिथ्यात्व में पड़ा है... आहाहा! भाई! उसकी यह सामग्री बिखर जाएगी। ऐसी सामग्री में जाना पड़ेगा। निगोद और नरक में। आहाहा! इसलिए विमुख हो जा। बाहर के प्रेम से विमुख हो जा, अन्दर के प्रेम में आ जा। आहाहा! पलटा मारने की बात है। करना सब यह। दृष्टि जो पर्याय और राग के ऊपर है, वह सब अंश और विकृत के ऊपर है, वह दृष्टि अंशी पूरे निर्विकारी परमात्मस्वरूप के ऊपर दृष्टि पड़ने पर उसे चारित्रमोह का राग आवे, वह भी दुःखरूप और जहर लगता है, काला नाग लगता है। आहाहा! यहाँ तो दो-चार लड़के ठीक हुए, उसमें दो-दो लाख, लाख-लाख की आमदनीवाले हुए (तो) बस! मजा मानता है। मार डाला, प्रभु! तूने तुझे। तूने तुझे मार डाला। जीवित ज्योति आनन्द का सागर, उसमें आनन्द नहीं मानकर, जिसमें आनन्द नहीं है, उसमें माना है, प्रभु! तूने तुझे मार डाला है। यह नहीं, इतना नहीं, यह नहीं, मैं नहीं। आहाहा! आहाहा! वीतरागमार्ग का सम्यग्दर्शन और उसके पन्थ की रीति कोई अलौकिक है। आहाहा!

विरागी उदयागत कर्मों को मात्र... भाषा ऐसी है न? **मात्र जान ही लेता है, उनके प्रति उसे रागद्वेषमोह नहीं है।** आहाहा! **इस प्रकार...** इस प्रकार कहा, उस प्रकार से **राग-द्वेष-मोह के बिना ही उनके फल को भोगता हुआ दिखाई देता है,...**

आहाहा! यह वापस बात की। बाहर में ऐसे भोगते दिखता है न! भोगे किसे? परद्रव्य को भोगे? आहाहा! परद्रव्य को तो अज्ञानी भी भोग नहीं सकता। आहाहा! अज्ञानी भोगे तो राग-द्वेष को। पर को तो स्पर्श भी नहीं करता, कभी स्पर्श नहीं कर सकता। आहाहा! तो ज्ञानी को कहते हैं कि इस प्रकार राग बिना उसके फल को भोगता हुआ, दिखता है न, इसलिए (ऐसा कहा)। आहाहा! **तो भी उसके कर्म का आस्रव नहीं होता,...** उसे नये कर्म नहीं आते। आहाहा! अधिकार निर्जरा का है न? नये आते तो नहीं, परन्तु पुराने खिर जाते हैं। आहाहा!

कर्मास्रव के बिना आगामी बन्ध नहीं होता... नये कर्म आये बिना नया बन्ध होता नहीं। आते नहीं, वहाँ फिर बन्ध कहाँ से हुआ? आहाहा! जहाँ स्व-स्वभाव आनन्द का समुद्र भरा है। आनन्द के जल से भरपूर सागर प्रभु, उसके समक्ष राग की तुच्छता लगने पर राग का रस ही उड़ गया है, परन्तु भोगता है, ऐसा व्यवहार से कहा जाता है। इसलिए उसके नया कर्म नहीं आता। आहाहा! **कर्मास्रव के बिना आगामी बन्ध नहीं होता और उदयागतकर्म तो अपना रस देकर खिर ही जाते हैं...** आहाहा!

उदय आता है परन्तु खिर जाता है। पूर्व में अज्ञानभाव से बाँधे हुए कर्म सत्ता में पड़े हैं। आहाहा! वह आते हैं, आने पर भी वर्तमान उपयोग जितना करे, तत्प्रमाण में भोगता है। ज्ञानी का उपयोग तो उनके प्रति है नहीं। आहाहा! स्त्री का अर्थ आता है न, बालस्त्री और पुरुष। इसी प्रकार सत्ता में पड़े हुए कर्म उदय में आये, उदय में आये परन्तु अपनेरूप नहीं जानता। आहाहा! और अज्ञानी अपनेरूप जानकर उन्हें वेदता और अनुभवता है। आहाहा! उसमें पाँच-पचास लाख, करोड़-दो करोड़ पैसे (रुपये हों), लड़के अच्छे हुए, नौकर अच्छा काम करते हों... आहाहा! फले-फूले देखे, उसे कि हम फले-फूले। जहर में! जहर में फले-फूले हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : आपको वह जहर लगता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह क्या कहते हैं? देखो न! इसके सेठ आये नहीं थे? चिमनलाल के। मुम्बई... मुम्बई! पचास करोड़ रुपये, पचास करोड़। क्या नाम? कीलाचन्द देवचन्द। रामवास। उनकी बहू आयी थी, बहू जैन... बहू जैन मन्दिरमार्गी (थीं) और वह वैष्णव। दर्शन को आया, आवे तो सही न! घर ले गये थे, पैसे रखे थे। पन्द्रह सौ घर में रखे

थे, यहाँ हजार रखे थे। पचास करोड़ रुपये, मुम्बई, इस चिमनभाई के सेठ। आहाहा! कितनी मेरी दुकानें और कितने मेरे लड़के कमाऊ और कितना मैं फला-फूला हूँ! आहाहा! इसके सेठ भी पैसेवाले हैं। जामनगर के। उन्हें साढ़े तीन करोड़ की आमदनी है। धूल.. धूल के ढ़ेर। मरकर जाएँगे कहीं के कहीं। आहाहा! संयोगी चीज़ वियोग लेकर आती है। संयोगी चीज़ वियोग लेकर ही आती है। आहाहा! अरेरे! आहाहा! प्रभु तो ऐसा कहते हैं, प्रभु! तू तो नित्यानन्द प्रभु है न! इस पर्याय का संयोग होता है, उसे हम संयोग कहते हैं, कहते हैं। निर्मल पर्याय, हों! आहाहा!

त्रिकाली नित्यानन्द प्रभु आनन्द का दल, सुख का सागर, अमृत का महाभण्डार! आहाहा! जिसके भण्डार की खुमारी के समक्ष कोई पता नहीं, ऐसा अमृत का सागर! आहाहा! उसके समक्ष राग की क्या गिनती ? है ? आहाहा! उसे ऐसा लगता है कि ऐसे पैसे हुए और लड़के कमाऊँ न! सब जहर है, आहाहा! उत्साह से जहर का प्याला पीता है।

मुमुक्षु : लड़के कर्मी हुए।

पूज्य गुरुदेवश्री : कर्मी हुए। आहाहा! लड़का ही किसका है, वह कर्मी और धर्मी ? आत्मा को लड़का कैसा और आत्मा को बाप कैसा ? आहाहा! वह तो पर आत्मा है, पर शरीर है, शरीर जड़ परमाणु है। (उसका) आत्मा पर है, उसकी पर्याय पर में है। तुझे और उसे है क्या ? आहाहा!

यही कहते हैं, **राग-द्वेष-मोह के बिना ही उनके फल को भोगता हुआ दिखाई देता है, तो भी उसके कर्म का आस्रव नहीं होता, कर्मास्रव के बिना आगामी बन्ध नहीं होता और उदयागतकर्म तो अपना रस देकर खिर ही जाते हैं...** खिर '**ही**' जाते हैं, वापस ऐसा। '**ही**'! आहाहा! चैतन्य हीरा जहाँ हाथ आया, उसे यह पुत्र-बुत्र, पैसा और हीरा, लड़के और लड़कियाँ और स्त्री यह सब ठीकरा (लगते हैं)। हीरा, यह चैतन्य हीरा अन्दर पड़ा है। आहाहा! उसकी कीमत के समक्ष दूसरे सबकी कीमत उड़ गयी। आहाहा! इसलिए मेरेपने में उसे मिठास रही नहीं। आहाहा! इसलिए कर्म खिर जाते हैं।

क्योंकि उदय में आने के बाद कर्म की सत्ता रह ही नहीं सकती। उदय में आया, वह तो खिर ही जाता है। या तो यह राग-द्वेष करे तो नया बँधे, न करे तो यूँ तो खिर जाता है और वैसे भी खिर जाता है। आहाहा! **इस प्रकार उसके नवीन बन्ध नहीं होता**

और उदयागत कर्म की निर्जरा हो जाने से उसके केवल निर्जरा ही हुई। आहाहा! **इसलिए सम्यग्दृष्टि विरागी के भोगोपभोग को निर्जरा का ही निमित्त कहा गया है।** आहाहा! निमित्त अर्थात् निर्जरा का कारण, ऐसा। कर्म खिरता है, उसमें यह निमित्त है, ऐसा नहीं। भोगोपभोग निर्जरा का ही कारण कहने में आता है। आहाहा! यह संयोग आया, सो आया, फिर से संयोग आनेवाला नहीं है। राग भी आया सो आया, फिर से वह राग आनेवाला नहीं है। जैसे पका हुआ फल डंठल में से सड़कर गल जाता है, गिर जाता है, उसी प्रकार ज्ञानी को कर्म का पाक आकर सड़कर गल जाता है। आहाहा! ऐसी तत्त्व की बात है। निवृत्ति भी नहीं होती। सुनने की निवृत्ति नहीं होती। वह रुचे और श्रद्धा करे, यह तो कहाँ था? आहाहा! अरेरे! समय चला जाता है। मृत्यु के समीप (जाता है)। एक-एक समय जाता है, वह मृत्यु के समीप जाता है। देह की (छूटने की) स्थिति निश्चित है कि इस क्षेत्र में, इस काल में, इस समय में (छूटेगी)। आहाहा!

सम्यग्दृष्टि विरागी के भोगोपभोग को निर्जरा का ही निमित्त कहा गया है। पूर्व कर्म उदय में आकर उसका द्रव्य खिर गया... यह द्रव्यनिर्जरा की बात है। द्रव्यनिर्जरा अर्थात् कर्म के रजकण उदय आये, सत्ता में थे, वे उदय आये, पर्यायरूप से, वे खिर गये।

मुमुक्षु : मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी का कर्म खिर गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो सब खिर गये, यहाँ तो कहते हैं। आनन्द के स्वाद के समक्ष (सब खिर गये)। जरा चारित्रमोह का राग आया, कहा न! परन्तु वह भी उसका रस नहीं है; इसलिए उड़ गया। उसका भी वास्तव में बन्ध नहीं है। थोड़ा रस और स्थिति बन्ध पड़े, उसकी गिनती नहीं है। आहाहा! वापस सर्वथा बन्ध नहीं है, ऐसा नहीं है। यहाँ तो अभी सम्यग्दर्शन, उसके ज्ञान और आनन्द के स्वाद के समक्ष पूरी दुनिया का स्वाद उड़ गया है। चक्रवर्ती का राज्य भी जिसे सड़ा हुआ तिनका लगता है, इन्द्र के इन्द्रासन भी सड़ी हुई बिल्ली, मरी हुई बिल्ली सड़ी हो, ऐसा लगता है। आहाहा! अज्ञानी को तो पाँच-पच्चीस लाख की सामग्री मिली, वहाँ तो... आहाहा! अभी हम चढ़ती डगर हैं, हमारा सब चढ़ता हुआ है। आहाहा! चढ़ता है या पढ़ता है, तुझे खबर नहीं। आहाहा! दुनिया से अलग बात है, बापू! आहाहा! भगवान वीतराग का मार्ग और दुनिया की रीति और पद्धति पूरी पूर्व-पश्चिम का अन्तर है। आहाहा!

गाथा - १९४

अथ भावनिर्जरास्वरूपमावेदयति –

दव्वे उवभुंजंते णियमा जायदि सुहं व दुक्खं वा।
तं सुह-दुक्ख-मुदिण्णं वेददि अध णिज्जरं जादि।।१९४।।

द्रव्ये उपभुज्यमाने नियमाज्जायते सुखं वा दुःखं वा।
तत्सुखदुःखमुदीर्णं वेदयते अथ निर्जरां याति।।१९४।।

उपभुज्यमाने सति हि परद्रव्ये तन्निमित्तः सातासातविकल्पानतिक्रमणेन वेदनायाः सुखरूपो वा दुःखरूपो वा नियमादेव जीवस्य भाव उदेति। स तु यदा वेद्यते तदा मिथ्यादृष्टेः रागादिभावानां सद्भावेन बन्धनिमित्तं भूत्वा निर्जीर्यमाणोऽप्यनिर्जीर्णः सन् बन्ध एव स्यात्; सम्यग्दृष्टेस्तु रागादिभावानामभावेन बन्धनिमित्तमभूत्वा केवलमेव निर्जीयमाणो निर्जीर्णः सन्निर्जरैव स्यात्।।१९४।।

अब भावनिर्जरा का स्वरूप कहते हैं:-

परद्रव्य के उपभोग निश्चय, दुःख वा सुख होय है।
इन उदित सुखदुख भोगता, फिर निर्जरा हो जाय है।।१९४।।

गाथार्थ : [द्रव्ये उपभुज्यमाने] वस्तु भोगने में आने पर, [सुखं वा दुःखं वा] सुख अथवा दुःख [नियमात्] नियम से [जायते] उत्पन्न होता है; [उदीर्णं] उदय को प्राप्त (उत्पन्न हुवे) [तत् सुखदुःखम्] उस सुखदुःख का [वेदयते] अनुभव करता है, [अथ] पश्चात् [निर्जरां याति] वह (सुखदुःखरूप भाव) निर्जरा को प्राप्त होता है।

टीका : परद्रव्य भोगने में आने पर, उसके निमित्त से जीव का सुखरूप अथवा दुःखरूप भाव नियम से ही उदय होता है अर्थात् उत्पन्न होता है क्योंकि वेदन साता और असाता-इन दो प्रकारों का अतिक्रम नहीं करता (अर्थात् वेदन दो प्रकार का ही है- सातारूप और असातारूप)। जब उस (सुखरूप अथवा दुःखरूप) भाव का वेदन होता है तब मिथ्यादृष्टि को, रागादिभावों के सद्भाव से बंध का निमित्त होकर (वह भाव) निर्जरा को प्राप्त होता हुआ भी (वास्तव में) निर्जरित न होता हुआ, बन्ध ही होता है; किन्तु सम्यक्दृष्टि के, रागादिभावों के अभाव से बन्ध का निमित्त हुए बिना, केवलमात्र

निर्जरित होने से (वास्तव में) निर्जरित होता हुआ, निर्जरा ही होती है।

भावार्थ : परद्रव्य भोगने में आने पर, कर्मोदय के निमित्त से जीव के सुखरूप अथवा दु:खरूप भाव नियम से उत्पन्न होता है। मिथ्यादृष्टि के रागादि के कारण वह भाव आगामी बन्ध करके निर्जरित होता है, इसलिए उसे निर्जरित नहीं कहा जा सकता; अत: मिथ्यादृष्टि को परद्रव्य के भोगते हुए बन्ध ही होता है। सम्यक्दृष्टि के रागादिक न होने से आगामी बन्ध किये बिना ही वह भाव निर्जरित हो जाता है, इसलिए उसे निर्जरित कहा जा सकता है; अत: सम्यक्दृष्टि के परद्रव्य भोगने में आने पर निर्जरा ही होती है। इस प्रकार सम्यक्दृष्टि के भावनिर्जरा होती है।

गाथा - १९४ पर प्रवचन

अब भावनिर्जरा का स्वरूप कहते हैं। यह द्रव्यनिर्जरा का कहा। अब भावनिर्जरा अर्थात्? अशुद्धता थोड़ी हो जरा परन्तु वह तुरन्त खिर जाए, ऐसा कहते हैं। जिस प्रकार वह सामग्री आवे परन्तु वह चली जाती है। उसके साथ सम्बन्ध नहीं है और भावनिर्जरा अर्थात् धर्मी को भी जरा राग का वेदन आता है परन्तु वह वेदन खिर जाता है। आहाहा! ऐसी बातें। यह तो बाहर में फँस गया। यह क्रियाकाण्ड भक्ति की और पूजा की और मन्दिर बनाया, मूर्तियाँ स्थापित कीं, ओहो! मानो हमने क्या किया! पाँच-दस लाख खर्च किये हों, उसमें मानो... आहाहा! धूल भी किया नहीं, ऐसा। किया नहीं, ऐसा नहीं, की है भ्रमणा (की है)। मिथ्यात्व को सेवन करता है। आहाहा! दोपहर में तो तीन दिन से चलती है न? कर्म की बात। आहाहा!

१९४ (गाथा)।

दव्वे उवभुंजंते णियमा जायदि सुहं व दुक्खं वा।
तं सुह-दुक्ख-मुदिण्णं वेदयदि अध णिज्जरं जादि।।१९४।।

परद्रव्य के उपभोग निश्चय, दु:ख वा सुख होय है।
इन उदित सुखदुख भोगता, फिर निर्जरा हो जाय है।।१९४।।

टीका : परद्रव्य भोगने में आने पर,... परद्रव्य भोगने में आने पर। परद्रव्य भोगे

नहीं जा सकते, तथापि लोगों की नजरें हैं, इस नजर से बात करते हैं। आहाहा! लोगों की नजर ऐसी है कि यह खाता है। लो! यह खाता है न? अपने यह लड्डू खाते हैं, यह अरबी के खाते हैं। चूरमा के लड्डूओं के भटका भरते हैं और अरबी के (भजिया) खाते हैं, यह आम का रस पीते हैं, पूड़ी और रस खाते हैं। अज्ञानी दुनिया इस प्रकार मानती है न! इस दृष्टि की बात की है। लोग देखते हैं इस अपेक्षा से। आहाहा!

परद्रव्य भोगने में आने पर, उसके निमित्त से जीव का सुखरूप अथवा दुःखरूप भाव नियम से ही उदय होता है... ओहोहो! क्या कहते हैं? धर्मी को भी जरा राग और द्वेष का वेदन आ जाता है। वह आता है, ऐसा खिर जाता है। आवे, एक समय हुआ, (वहाँ) खिर जाता है परन्तु पहले में उस जड़ निर्जरा की बात की, यह भावनिर्जरा की बात है। आहाहा! अब यहाँ सर्वत्र जाना और यहाँ पहुँचना। स्त्री-पुत्र को सम्हालना, धन्धा करना या यह करना? आहाहा! यह तो कर रहा है, भाई! अनादि काल से जहर के प्याले पीये हैं। आहाहा! अरे... भाई! ऐसा अवसर कब मिलेगा? भाई! उसमें वीतराग का सच्चा सत्य, परम सत्य कान में पड़े। आहाहा! तू यह है, तू राग नहीं, तू शरीर नहीं, तू कर्म नहीं, तू अल्पज्ञ नहीं। आहाहा!

प्रभु! तू पूरा है। आहाहा! क्या आया नहीं वह? 'प्रभु मेरे तुम सब बातें पूरा'। आया नहीं था? पण्डितजी ने गाया। 'प्रभु मेरे तुम सब बातें पूरा, पर की आस कहाँ करे प्रीतम' प्रिय प्रभु! तू पर का प्रेम कहाँ करता है? क्योंकि किस बात में अधूरा? आहाहा! प्रीतम का प्रश्न किया था न? पूनमचन्द ने। प्रिय, प्रिय। आहाहा! 'पर की आस कहाँ करे प्रीतम तुम कहाँ अधूरा?' प्रभु! तू किस बात में अधूरा है? आहाहा! इसमें शरीर और कुछ रूपवान मिले, यह पैसा कुछ पाँच-पच्चीस लाख हो, लड़का अच्छा हो। अच्छा अर्थात् यह कर्मी। लड़के की बहू कुछ अच्छी आवे... हो गया, मर गया। मरकर निगोद में जाए, नरक में जाए। अर..र..! प्रभु! तेरी पीड़ा तूने सुनी नहीं, प्रभु! आहाहा! और तेरा आनन्द भी तूने सुना नहीं। तुझमें आनन्द भरा है। आहाहा! लबालब सुख के सागर के पानी से ठसाठस भरा हुआ है। आहाहा! तेरे आनन्द के लिये अपूर्णता, विपरीतता तो नहीं, परन्तु अपूर्णता नहीं, प्रभु! आहाहा! किस बात में अधूरा? क्या पुरुषार्थ से अधूरा है? पुरुषार्थ से पूरा है। ज्ञान से अधूरा है? आहाहा! आनन्द से अधूरा है? शान्ति से अधूरा है? स्वच्छता से अधूरा है? प्रभुता से

अधूरा है ? आहाहा ! किस बात में अधूरा ? प्रभु ! तुम सब बात में पूरा। आहाहा ! इस प्रकार ज्ञानी को जहाँ जरा राग आता है। है ? वहाँ सुख-दुःख होता है।

नियम से ही उदय होता है... जरा सुख-दुःख का वेदन आता है। आहाहा ! **क्योंकि वेदन साता और असाता-इन दो प्रकारों का अतिक्रम नहीं करता...** अन्दर में यह साता (अर्थात्) सुख की कल्पना, दुःख; साता-असाता तो संयोग देते हैं परन्तु संयोग में यहाँ सुख-दुःख की कल्पना लेना। आहाहा ! साता-असाता कहीं सुख-दुःख नहीं उपजाता। वह तो संयोग है। संयोग में इसका लक्ष्य जाता है, इसलिए जरा साता-असाता, सुख-दुःख की कल्पना ज्ञानी को भी होती है। होती है तो भी वह हुई, साथ में खिर जाती है। भावनिर्जरा हो जाती है। आहाहा ! है ? **क्योंकि वेदन साता और असाता-इन दो प्रकारों का अतिक्रम नहीं करता (अर्थात् वेदन दो प्रकार का ही है-सातारूप और असातारूप)।** आहाहा ! अब यह कब वेदन होता है, यह (विशेष कहेंगे)

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)